International Journal of Web of Multidisciplinary Studies
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal)
website: https://ijwos.com
Volume 3 Issue 3 , March 2026
E-ISSN : 3049-2424
DOI: https://doi.org/10.71366/ijwos03032667084

राजपूत काल में सामाजिक और आर्थिक संरचनाः शहरीकरण के दृष्टिकोण से

डॉ. प्रीति कुमारी
इतिहास विभाग,
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्याल,भागलपुर

Article Info

Article History:

Published:19 March 2026

Publication Issue:
Volume 3, Issue 3
March-2026

Page Number:
433-439

Corresponding Author:
डॉ. प्रीति कुमारी

Abstract:

राजपूत काल (लगभग 8वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी ई.) भारतीय इतिहास में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण अवधि माना जाता है। इस समय विशेष रूप से उत्तर और पश्चिमी भारत – जैसे राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कुछ क्षेत्रों में अनेक राजपूत राज्यों का उदय हुआ, जिन्होंने क्षेत्रीय सत्ता, प्रशासनिक संगठन और सैन्य संरचना को सुदृढ़ बनाया। मुगल सत्ता के उतार–चढ़ाव और क्षेत्रीय शक्तियों के उभार के बीच राजपूत शासकों ने अपने–अपने क्षेत्रों में राजनीतिक स्थिरता बनाए रखने का प्रयास किया। उन्होंने दुर्गों, किलों, मंदिरों और भव्य नगरों का निर्माण कराया, जो न केवल शासन और सुरक्षा के केंद्र थे बल्कि सांस्कृतिक और आर्थिक गतिविधियों के भी महत्वपूर्ण स्थल बन गए। राजपूत शासन व्यवस्था प्रायः सामंती ढाँचे पर आधारित थी, जिसमें स्थानीय सामंतों, जागीरदारों और अधिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। इस प्रशासनिक व्यवस्था के कारण विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हुआ और स्थानीय समाज में संगठन तथा स्थिरता बनी रही। इसी काल में शहरीकरण की प्रक्रिया भी उल्लेखनीय रूप से विकसित हुई। राजपूत शासकों ने अपनी राजधानियों, किलों तथा प्रमुख व्यापारिक मार्गों के आसपास नगरों की स्थापना और विकास को प्रोत्साहित किया। इन नगरों में प्रशासनिक अधिकारियों, सैनिकों, व्यापारियों, साहूकारों और कारीगरों का निवास होता था, जिसके कारण नगर आर्थिक और सामाजिक जीवन के केंद्र बन गए। नगरों में बाजार, मंडियाँ, कार्यशालाएँ तथा शिल्प केंद्र विकसित हुए, जहाँ विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन और व्यापार होता था। वस्त्र निर्माण, धातु शिल्प, आभूषण निर्माण, मिट्टी के बर्तन, हथियार और अन्य कारीगरी से जुड़े उद्योगों का विकास नगरों में विशेष रूप से हुआ।

व्यापारिक गतिविधियों के विस्तार के कारण नगरों में दूर–दराज के क्षेत्रों से व्यापारी आने लगे, जिससे क्षेत्रीय और अंतर–क्षेत्रीय व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला। इसके अतिरिक्त व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा, कर व्यवस्था और बाजारों के नियमन में भी राजपूत शासकों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। नगर केवल आर्थिक गतिविधियों के केंद्र ही नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के भी प्रमुख केंद्र बन गए थे। यहाँ विभिन्न जातियों, पेशागत समूहों और समुदायों का निवास होता था, जो अपने–अपने व्यवसायों और सामाजिक संगठनों के माध्यम से नगर जीवन को गतिशील बनाते थे। मंदिर, सराय, तालाब, बाजार और सार्वजनिक भवन नगरों की सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण हिस्सा थे। इन संस्थानों के माध्यम से धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों का भी विकास हुआ। इस प्रकार राजपूत काल में शहरीकरण की प्रक्रिया ने केवल नगरों की संख्या और आकार में वृद्धि ही नहीं की, बल्कि उसने आर्थिक प्रगति, सामाजिक संगठन तथा सांस्कृतिक जीवन के विकास को भी प्रोत्साहित किया। इसलिए कहा जा सकता है कि राजपूत काल में विकसित शहरी जीवन उस समय की व्यापक सामाजिक–आर्थिक संरचना का महत्वपूर्ण अंग था और इसने मध्यकालीन भारत के आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

Keywords: राजपूत शासन, सामंती व्यवस्था, कृषि कर, हस्तशिल्प उद्योग, वस्त्र और आभूषण, व्यापार, शहरीकरण, जाति संरचना

Copyright © 2025 The Author(s) : This is an open access article under the CC BY license (http://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/)

आर्थिक संरचना

राजपूत काल की आर्थिक संरचना मुख्यतः कृषि पर आधारित थी, जो उस समय की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार मानी जाती थी। अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती थी और उनका जीवन कृषि तथा उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर था। भूमि उत्पादन, सिंचाई व्यवस्था, कर प्रणाली और सामंती संबंध इस आर्थिक व्यवस्था के प्रमुख घटक थे। राजपूत शासकों ने भूमि से प्राप्त राजस्व को राज्य की आय का मुख्य स्रोत बनाया, जिसके माध्यम से प्रशासन, सेना और सार्वजनिक निर्माण कार्यों का संचालन किया जाता था।[1] कृषि के साथ–साथ हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग और व्यापारिक गतिविधियाँ भी आर्थिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा थीं, जिनसे नगरों और बाजारों का विकास हुआ। विभिन्न शिल्पकारों, कारीगरों और व्यापारियों की सक्रियता ने उत्पादन और विनिमय की प्रक्रिया को गतिशील बनाया। इस प्रकार राजपूत काल की आर्थिक संरचना बहुआयामी थी, जिसमें कृषि के साथ–साथ उद्योग, शिल्प और व्यापार भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे और यही तत्व उस समय की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को संचालित करने में सहायक थे।[2]

कृषि और भूमि व्यवस्था

राजपूत काल में अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि थी और उस समय की अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि कार्यों से जुड़ी हुई थी। ग्रामीण क्षेत्र आर्थिक जीवन के प्रमुख केंद्र थे, जहाँ भूमि उत्पादन ही आजीविका का प्रमुख साधन था। उपजाऊ तथा सिंचाई योग्य क्षेत्रों में धान, गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का, दालें और तिलहन जैसी विभिन्न फसलें उगाई जाती थीं, जो न केवल स्थानीय उपभोग की आवश्यकताओं को पूरा करती थीं बल्कि कुछ क्षेत्रों में व्यापार के लिए भी महत्वपूर्ण मानी जाती थीं। जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार की खेती की जाती थी, जिससे कृषि उत्पादन में विविधता दिखाई देती थी। कृषि को स्थिर और उत्पादक बनाने के लिए राजपूत शासकों ने सिंचाई व्यवस्था के विकास पर विशेष ध्यान दिया।[3] तालाबों, कुओं, बावड़ियों, नहरों और जलाशयों का निर्माण कराया गया, जिससे वर्षा पर निर्भरता कुछ हद तक कम हो सके और खेती की निरंतरता बनी रहे। कई क्षेत्रों में स्थानीय समुदाय और सामंत भी इन जल–स्रोतों के निर्माण और संरक्षण में योगदान देते थे, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थायित्व मिलता था। भूमि व्यवस्था प्रायः सामंती ढाँचे पर आधारित थी, जिसमें राजा को भूमि का सर्वोच्च स्वामी माना जाता था, जबकि भूमि के प्रबंधन और राजस्व संग्रह की जिम्मेदारी विभिन्न सामंतों, ठाकुरों, जमींदारों तथा स्थानीय अधिकारियों को दी जाती थी।[4] ये सामंत और जमींदार अपने अधीन क्षेत्रों में किसानों से भूमि कर (राजस्व) की वसूली करते थे और उसका एक निश्चित भाग राज्य को देते थे। भूमि कर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था, जिसके आधार पर प्रशासनिक व्यवस्था, सैन्य संगठन तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यों का संचालन किया जाता था। कई स्थानों पर कर उपज के एक निश्चित हिस्से के रूप में लिया जाता था, जबकि कुछ क्षेत्रों में नकद कर भी प्रचलित था। इसके अतिरिक्त कभी–कभी किसानों को श्रम सेवा या अन्य प्रकार के स्थानीय कर भी देने पड़ते थे।[5]

कृषि व्यवस्था में किसान समाज की महत्वपूर्ण भूमिका थी, जो भूमि की जुताई, बुआई और कटाई जैसे सभी कार्यों में संलग्न रहते थे। किसान, बटाईदार तथा खेतिहर मजदूर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाते थे। हालांकि सामंती व्यवस्था के कारण भूमि पर अधिकार प्रायः सामंतों और जमींदारों के हाथों में केंद्रित रहता था, जिससे किसानों की स्थिति कई बार निर्भरशील हो जाती थी। इसके बावजूद कृषि उत्पादन की निरंतरता, सिंचाई साधनों का विकास तथा भूमि से प्राप्त राजस्व ने राजपूत काल की आर्थिक संरचना को एक मजबूत आधार प्रदान किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कृषि और भूमि व्यवस्था न केवल राजपूत काल की अर्थव्यवस्था का केंद्र थीं, बल्कि उसी के माध्यम से सामाजिक संबंधों, प्रशासनिक ढाँचे और ग्रामीण जीवन की संरचना भी निर्धारित होती थी।[6]

हस्तशिल्प और उद्योग

राजपूत काल में नगरों के विकास के साथ–साथ हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों का विस्तार अत्यंत उल्लेखनीय था। नगर केवल प्रशासन और सैन्य नियंत्रण के केंद्र नहीं थे, बल्कि ये आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र भी बन गए थे। नगरों में औद्योगिक और शिल्प कार्यों का केंद्रीकरण हुआ, जिससे उत्पादकता, गुणवत्ता और विविधता में वृद्धि हुई। इस काल में कारीगरों और शिल्पकारों के कौशल और उनके द्वारा बनाए गए उत्पाद न केवल स्थानीय लोगों की

आवश्यकताओं को पूरा करते थे, बल्कि दूर–दराज के क्षेत्रों में व्यापार और निर्यात का भी प्रमुख माध्यम बन गए।[7] नगरों की अर्थव्यवस्था इस प्रकार के उद्योगों पर अत्यधिक निर्भर थी। हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों ने नगरों को आर्थिक जीवन के जीवंत केंद्र में बदल दिया और राजपूत शासकों की सैन्य, प्रशासनिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा किया। वस्त्र निर्माण उद्योग इस काल में अत्यंत विकसित था। नगरों में बुनाई, कढ़ाई, रंगाई और डिजाइनिंग के विभिन्न चरणों को विशेषज्ञ कारीगर संचालित करते थे। सूती और रेशमी वस्त्र उच्च वर्ग और शाही परिवारों के लिए बनाए जाते थे, जिनमें परिष्कृत डिजाइन और बारीक कढ़ाई शामिल होती थी। इन वस्त्रों में धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतीकों का उपयोग भी किया जाता था, जो कला और परंपरा का अनूठा मिश्रण प्रस्तुत करते थे।[8] इसके अतिरिक्त ऊनी वस्त्र, धोती, चादर और आवरण भी बड़े पैमाने पर उत्पादित किए जाते थे। नगरों में वस्त्र उद्योग के लिए अलग–अलग क्षेत्र या मोहल्ले बनाए गए थे, जहाँ बुनकर, रंगकार और कढ़ाईकार एकत्र होकर अपने उत्पाद तैयार करते थे। आभूषण निर्माण उद्योग भी नगरों की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार था। सुनार सोने, चाँदी और कीमती पत्थरों का उपयोग करके हार, बाली, अंगूठी, कंगन और अन्य गहने बनाते थे। इन गहनों में जटिल जड़ाई, उत्कीर्णन और मोती–मणी सजावट के काम शामिल होते थे। इसके अलावा, राजपूत परिवारों और दरबारों के लिए विशेष अवसरों पर अनूठे गहने बनाए जाते थे, जिनमें राजा और रानी के व्यक्तित्व, शक्ति और प्रतिष्ठा का प्रतीकात्मक चित्रण होता था। आभूषण उद्योग ने न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को समृद्ध किया, बल्कि विदेशों में व्यापार के माध्यम से राज्य को वैश्विक आर्थिक संपर्कों से जोड़ा।[9]

हथियार निर्माण उद्योग का महत्व राजपूत काल में विशेष रूप से बढ़ गया था। सेना की आवश्यकताओं के कारण तलवार, भाला, ढाल, कवच, धनुष–बाण और अन्य युद्धक उपकरणों का निर्माण बड़े पैमाने पर होता था। लोहार और धातु कारीगर इन हथियारों को अत्यंत कुशलता और बारीकी से तैयार करते थे। कई नगरों में हथियार उद्योग के लिए विशेष क्षेत्र बनाए गए थे, जहाँ प्रशिक्षित कारीगर विभिन्न तकनीकों का उपयोग करते थे। तलवार और कवच केवल सैन्य उपयोग के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य राज्यों और देशों में व्यापार के माध्यम से निर्यात भी किए जाते थे।[10] इस प्रकार हथियार उद्योग ने न केवल सैन्य शक्ति को सुदृढ़ किया, बल्कि आर्थिक और व्यापारिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। मंदिरों, महलों और किलों के निर्माण में पत्थर और लकड़ी के शिल्पकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। पत्थर की मूर्तिकला, स्तंभों की नक्क□ाशी, छतों और दरवाजों की कलात्मक सजावट, और लकड़ी की बारीक कारीगरी ने नगरों और धार्मिक स्थलों को भव्य और आकर्षक बनाया। मंदिरों में देवताओं की मूर्तियाँ, दरबारों में सजावटी खिड़कियाँ, महलों में लकड़ी के फर्श और झरोखे इन शिल्प कार्यों ने नगरों की वास्तुकला और शहरी सौंदर्य को बढ़ाया। इस प्रकार पत्थर और लकड़ी के शिल्प ने केवल वास्तुशिल्पीय दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।[11]

नगरों में कारीगरों और शिल्पकारों के लिए अलग–अलग मोहल्ले या बस्तियाँ बनाई जाती थीं। यह व्यवस्था पेशेगत विशेषज्ञता और उत्पादन की गुणवत्ता को सुनिश्चित करती थी। लोहार, सुनार, कुम्हार, बढ़ई, बुनकर और कढ़ाईकार अपने–अपने क्षेत्रों में रहते और कार्य करते थे। इस प्रकार का पेशेगत संगठन उत्पादन प्रक्रिया को अधिक संगठित और सुव्यवस्थित बनाता था। कई नगरों में कारीगर अपने स्वयं के संगठनों या गिल्ड का हिस्सा होते थे, जो उत्पादन की गुणवत्ता, मूल्य निर्धारण, कार्य विभाजन और प्रशिक्षण पर निगरानी रखते थे। यह प्रणाली यह सुनिश्चित करती थी कि उत्पादक कार्य उच्च मानकों के अनुसार पूरा हो और बाजार में मूल्य स्थिर रहे। हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग केवल उत्पादन का माध्यम नहीं थे, बल्कि इनका व्यापार स्थानीय और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।[12]

व्यापार और बाजार

राजपूत काल में व्यापार और बाजार व्यवस्था आर्थिक जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आधार थीं। इस समय न केवल स्थानीय व्यापार का विकास हुआ, बल्कि अंतर–राज्यीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक संबंधों ने भी तीव्र गति पकड़ी। नगर और कस्बे आर्थिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र बन गए, जहाँ विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियाँ होती थीं। इन केंद्रों में न केवल खरीद–बिक्री होती थी, बल्कि आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी होता था। नगरों का विकास इसी व्यापारिक गतिविधियों के कारण हुआ, क्योंकि यहाँ विभिन्न सामाजिक और पेशागत समूहों – जैसे व्यापारी, कारीगर, बैंकर और कलाकार का मिश्रण मौजूद था।[13] आर्थिक जीवन में बाजारों का महत्व इतना था कि ये केवल वस्तुओं के लेन–देन का

केंद्र नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का भी प्रमुख हिस्सा बन गए। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और हस्तकला के उत्पादन मुख्य रूप से नगरों के बाजारों में पहुँचते थे। किसानों द्वारा उगाई गई अनाज, फल, दूध और अन्य कृषि उत्पादों को व्यापारी नगरों में लाकर बेचते थे। इसके साथ ही कारीगरों द्वारा निर्मित वस्त्र, धातु के बर्तन, हथियार, आभूषण और लकड़ी व मिट्टी के सामान भी बाजार में उपलब्ध होते थे। नगरों और कस्बों में साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक बाजारों का आयोजन होता था, जिसमें व्यापारियों, किसानों और कारीगरों का जमावड़ा होता था। इन बाजारों में केवल आर्थिक लेन–देन ही नहीं, बल्कि सूचना, कौशल और सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी होता था। यहाँ पर न केवल माल की बिक्री होती थी, बल्कि लोग अपने अनुभव साझा करते, नई तकनीक और कारीगरी सीखते तथा सामाजिक संपर्क मजबूत करते थे।[14]

राजपूत शासकों ने व्यापार और बाजार की सुरक्षा तथा सुविधा के लिए विशेष ध्यान दिया। उन्होंने मुख्य मार्गों और नगरों को जोड़ने वाले रास्तों की सुरक्षा सुनिश्चित की, ताकि व्यापारी सुरक्षित रूप से लंबी दूरी तय कर सकें। इसके अलावा, सरायों और विश्रामस्थलों का निर्माण किया गया, जहाँ व्यापारी और उनके कर्मचारी आराम कर सकें। सड़कों और व्यापार मार्गों का विकास केवल स्थानीय ही नहीं, बल्कि अंतर–राज्यीय व्यापार को भी प्रोत्साहित करता था। राजपूत शासकों द्वारा लगाए गए कर और शुल्क का संतुलन भी इस बात को सुनिश्चित करता था कि व्यापारियों पर अत्यधिक आर्थिक दबाव न पड़े और उनका लाभ सुरक्षित रहे। राजस्थान और गुजरात जैसे क्षेत्रों ने व्यापारिक मार्गों के केंद्र के रूप में विशेष महत्व प्राप्त किया।[15] इन मार्गों के माध्यम से व्यापारी न केवल राज्य के विभिन्न हिस्सों में वस्तुएँ पहुँचाते थे, बल्कि अफगानिस्तान, मध्य एशिया और अन्य पश्चिमी देशों के साथ भी व्यापारिक संपर्क स्थापित किया जाता था। इन मार्गों से घोड़े, कीमती वस्त्र, मसाले, धातुएँ, आभूषण और विलासिता की अन्य वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती थीं। इस व्यापारिक नेटवर्क ने भारतीय उपमहाद्वीप को वैश्विक आर्थिक प्रणाली से जोड़ने का कार्य किया और राजपूत राज्यों की समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार राजपूत काल में विकसित व्यापार और बाजार व्यवस्था ने आर्थिक जीवन को मजबूत आधार प्रदान किया। इसने नगरों और राज्यों की आर्थिक समृद्धि को बढ़ाया, सामाजिक और पेशागत संरचनाओं के बीच सहयोग और संपर्क को प्रोत्साहित किया और व्यापारियों, कारीगरों तथा किसानों के जीवन को सीधे रूप में प्रभावित किया। नगर केवल आर्थिक केंद्र ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों के केंद्र भी बने। इस व्यवस्था के कारण ही राजपूत काल के नगर और राज्य आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सुदृढ़ और समृद्ध थे।[16]

सामाजिक संरचना

राजपूत काल में सामाजिक संरचना अत्यंत संगठित, विस्तृत और स्पष्ट रूप से वर्ग और जाति आधारित थी, जिसमें समाज के विभिन्न वर्गों की भूमिकाएँ, अधिकार और कर्तव्य निश्चित रूप से निर्धारित थे। यह व्यवस्था केवल लोगों की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति तक सीमित नहीं थी, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक संबंधों और सांस्कृतिक पहचान को भी प्रभावित करती थी। इस संरचना में सबसे उच्च स्थान राजा और राजवंश का था, जो राज्य की राजनीतिक सत्ता, प्रशासनिक नियंत्रण और सैन्य शक्ति के प्रमुख केंद्र माने जाते थे।[17] राजा न केवल राज्य का सर्वोच्च शासक होता था, बल्कि न्याय, कानून और प्रशासन का अंतिम निर्णायक भी माना जाता था। उसके अधीन अनेक सामंत, मंत्री, सेनापति, प्रशासनिक अधिकारी और स्थानीय न्यायाधीश कार्यरत रहते थे, जो राज्य के विभिन्न भागों में शासन और व्यवस्था का संचालन करते थे। राजपूत शासक अपनी वीरता, युद्ध कौशल, क्षत्रिय परंपराओं और राजनीतिक दूरदर्शिता के लिए प्रसिद्ध थे, इसलिए समाज में उनका स्थान अत्यंत सम्मानजनक, प्रभावशाली और अद्वितीय था। उनके संरक्षण में कला, संस्कृति, शिक्षा और धार्मिक संस्थाएँ भी समृद्ध हुईं, जिससे समाज में सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों का विकास हुआ।[18]

राजपूत समाज में दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग जमींदार, सामंत और सेनानी वर्ग था, जिन्हें प्रायः ठाकुर या स्थानीय प्रभु कहा जाता था। यह वर्ग राज्य के प्रशासनिक और सैन्य ढांचे का महत्वपूर्ण आधार था। शासकों द्वारा इन्हें भूमि का अधिकार प्रदान किया जाता था, जिसके बदले वे राज्य के प्रति निष्ठा और आवश्यकतानुसार सैन्य सहायता प्रदान करते थे। सामंत अपने क्षेत्रों में भूमि का प्रबंधन करते थे, किसानों से कर वसूलते थे और स्थानीय प्रशासन तथा सुरक्षा व्यवस्था की देखरेख करते थे। युद्ध और संकट के समय यही वर्ग सेना का नेतृत्व करता था और राज्य की सीमाओं की रक्षा सुनिश्चित करता था। सामंत और ठाकुरों की भूमिका केवल सैन्य या प्रशासनिक ही नहीं थी, बल्कि वे सामाजिक नेतृत्व और न्याय व्यवस्था में भी

महत्वपूर्ण योगदान देते थे।[19] उनके संरक्षण में गांवों और नगरों में सामुदायिक मेलजोल, धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियाँ सुरक्षित रूप से संचालित होती थीं। समाज में व्यापारी और कारीगर वर्ग भी अत्यंत महत्वपूर्ण था, जो नगरों और बाजारों की आर्थिक गतिविधियों को संचालित करता था। व्यापारी वर्ग दूर–दराज के क्षेत्रों तक व्यापारिक संबंध स्थापित करता था, मूल्य निर्धारण करता था और विभिन्न वस्तुओं का आदान–प्रदान सुनिश्चित करता था। कारीगर और शिल्पकार विभिन्न प्रकार के उद्योगों और हस्तशिल्प कार्यों में संलग्न रहते थे, जैसे वस्त्र निर्माण, हथियार और आभूषण निर्माण, धातु शिल्प, मिट्टी के बर्तन, लकड़ी की कारीगरी, मूर्तिकला और कढ़ाई।[20] लोहार, सुनार, कुम्हार, बढ़ई, बुनकर और अन्य शिल्पकार नगरों के अलग–अलग मोहल्लों में रहते थे और अपने–अपने पेशों के माध्यम से उत्पादन कार्यों को व्यवस्थित करते थे। इन कारीगरों और व्यापारियों की सक्रियता से नगरों की अर्थव्यवस्था सशक्त, व्यवस्थित और गतिशील बनी रहती थी। नगरों में इनके संगठन और पेशागत संघों के माध्यम से उत्पादन की गुणवत्ता, कीमत और वितरण नियंत्रित होता था।[21]

समाज का सबसे बड़ा और आधारभूत वर्ग कृषक और सामान्य जनता का था। यह वर्ग कृषि उत्पादन, श्रम और अन्य आवश्यक कार्यों में संलग्न रहता था। किसान भूमि की जुताई, बुआई, सिंचाई, फसल उत्पादन और संग्रह के माध्यम से समाज की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करते थे और राज्य को राजस्व प्रदान करते थे। इसके अतिरिक्त खेतिहर मजदूर, पशुपालक और अन्य श्रमिक वर्ग भी ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था के संचालन में महत्वपूर्ण योगदान देते थे।[22] यद्यपि सामंती ढांचे के कारण किसान वर्ग कई बार जमींदारों और सामंतों पर निर्भर रहता था, उनकी भूमिका समाज और अर्थव्यवस्था के सुचारु संचालन में अनिवार्य थी। नगरों में इन सभी वर्गों और समुदायों के बीच एक संगठित और बहुआयामी सामाजिक जीवन विकसित हुआ था, जिसने सामूहिक जीवन, सुरक्षा और आर्थिक सहयोग को सुनिश्चित किया।[23] नगरों में व्यापारी संघ, शिल्पकार संगठन, पेशागत समितियाँ और अन्य सामाजिक संस्थाएँ सक्रिय थीं, जो अपने–अपने हितों की रक्षा करने के साथ–साथ सामाजिक अनुशासन, आर्थिक संतुलन और पेशागत नियमों को लागू करने में मदद करती थीं। इसके अतिरिक्त धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ – जैसे मंदिर, मठ, धर्मशालाएँ, सराय, सभा स्थल और उत्सव नगर जीवन का अभिन्न हिस्सा थीं। ये संस्थाएँ केवल धार्मिक आस्था का केंद्र नहीं थीं, बल्कि सामाजिक मेलजोल, सांस्कृतिक गतिविधियों, शिक्षा और सामूहिक पहचान को भी मजबूती प्रदान करती थीं। विभिन्न त्योहारों, मेलों, धार्मिक अनुष्ठानों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से नागरिकों के बीच सहयोग, सामूहिकता और सामाजिक एकता की भावना विकसित होती थी।[24]

इस प्रकार राजपूत काल की सामाजिक संरचना बहुस्तरीय, संगठित, पारस्परिक सहयोग और पेशागत विभाजन पर आधारित थी, जिसने न केवल सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित किया बल्कि प्रशासनिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक वैभव सुनिश्चित किया। यह संरचना मध्यकालीन भारतीय समाज की एक मजबूत नींव थी, जिसने आने वाले शहरी और ग्रामीण समाजों के लिए आदर्श प्रस्तुत किया और समाज को संतुलन और स्थिरता प्रदान की। राजपूत काल की यह सामाजिक व्यवस्था केवल प्रशासनिक या आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण थी, जिसने उस समय के समाज को एक संगठित और गतिशील रूप प्रदान किया।

शहरीकरण का दृष्टिकोण

राजपूत काल में शहरीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया थी, जिसने नगरों को केवल निवास के स्थान से आगे बढ़ाकर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र बना दिया। इस समय नगरों का विकास विशेष रूप से किलों, दुर्गों और प्रमुख व्यापारिक मार्गों के आसपास हुआ, क्योंकि सुरक्षा, प्रशासन और आर्थिक लेन–देन के लिए ये स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण थे।[25] राजपूत शासकों ने अपने राज्य की राजधानी और महत्वपूर्ण प्रशासनिक केंद्रों को मजबूत किलों के चारों ओर विकसित किया। किला न केवल प्रशासनिक और सैन्य नियंत्रण का केंद्र होता था, बल्कि यह शासक और उसके दरबार की शक्ति और वैभव का प्रतीक भी था। किले के आसपास धीरे–धीरे आवासीय क्षेत्र विकसित हुए, जिनमें विभिन्न सामाजिक वर्ग और पेशागत समूह अपने–अपने क्षेत्र में बसते थे। उदाहरण के लिए, सैनिक वर्ग, सामंत, कारीगर और व्यापारी अपने पेशों के अनुसार नगर में अलग–अलग मोहल्लों या बस्तियों में निवास करते थे। इससे नगर की सामाजिक संरचना स्पष्ट और व्यवस्थित रहती थी, और लोगों के बीच सामूहिक जीवन, सहयोग तथा सामाजिक अनुशासन बनाए रखने में मदद मिलती थी।[26] नगरों में बाजार और व्यापारिक क्षेत्र आर्थिक गतिविधियों के मुख्य केंद्र के रूप में कार्य करते थे। नगर के

बाजारों और मंडियों में कृषि उत्पाद, हस्तशिल्प वस्त्र, आभूषण, धातु शिल्प और अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुएँ आदान–प्रदान होती थीं। ये बाजार केवल आर्थिक लेन–देन का केंद्र नहीं थे, बल्कि सामाजिक मेल–जोल और पेशागत संगठन का भी स्थान थे। व्यापारी संघ और कारीगर संगठन व्यापारिक गतिविधियों के नियमन, गुणवत्ता नियंत्रण और मूल्य निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इसके अतिरिक्त नगरों में सार्वजनिक भवन, गोदाम और जलाशयों की व्यवस्था व्यापार और उत्पादन को सुचारु बनाए रखने में सहायक होती थी। राजस्थान और गुजरात जैसे व्यापारिक केंद्रों से अंतर–राज्यीय और विदेशी व्यापार भी संचालित होता था, जिससे नगरों का आर्थिक महत्व और बढ़ जाता था।[27]

सुरक्षा और प्रशासनिक दृष्टि से राजपूत नगरों में किलेबंदी और प्राचीर का निर्माण अत्यंत आवश्यक था। नगरों की योजना मुख्य मार्गों, गलियों और चौक–चौराहों के सुव्यवस्थित नेटवर्क पर आधारित होती थी, जिससे प्रशासनिक कार्य, सैनिक गतिविधियाँ और व्यापारिक आवागमन सुचारु रूप से संचालित हो सके। प्रवेश द्वारों, प्राचीरों और पहरेदारों के माध्यम से नगर और किले की सुरक्षा सुनिश्चित की जाती थी। इसके साथ ही नगरों के आसपास जलाशयों, तालाबों और बावड़ियों का निर्माण किया गया, जो न केवल कृषि और घरेलू जरूरतों के लिए आवश्यक थे, बल्कि सामरिक दृष्टि से भी नगर की सुरक्षा और आपूर्ति में सहायक थे।[28] शहरीकरण का प्रभाव सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। नगरों में विभिन्न जातियों, पेशागत समूहों और समुदायों के लोग एक साथ रहते थे, जिससे सामाजिक सहयोग, सांस्कृतिक आदान–प्रदान और सामूहिक पहचान मजबूत होती थी। नगरों में मंदिर, मठ, धर्मशाला, सभा स्थल और स्नान घाट जैसी संस्थाएँ नगर जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा थीं। ये संस्थाएँ धार्मिक आस्था के साथ–साथ शिक्षा, कला, संगीत और साहित्य के प्रसार का केंद्र भी थीं।[29] विभिन्न धार्मिक और सामाजिक उत्सव, मेले और सांस्कृतिक कार्यक्रम नगरवासियों के बीच सामाजिक संपर्क और सामूहिक भावना को बढ़ावा देते थे। नगरों में शिल्प, चित्रकला, स्थापत्य कला और हस्तशिल्प का विकास हुआ, जो राजपूत काल के सांस्कृतिक वैभव का परिचायक था। इसके अलावा, शहरीकरण ने प्रशासनिक दक्षता, न्याय व्यवस्था और सामुदायिक सहयोग को भी बढ़ावा दिया। नगरों में विभिन्न पेशागत और सामाजिक समूहों के संगठन बने, जिन्होंने नागरिक जीवन में अनुशासन बनाए रखा और नगरों को व्यवस्थित रखा। सड़कें, मुख्य मार्ग, गलियाँ, बाजार और सार्वजनिक स्थल एक सुव्यवस्थित नेटवर्क के माध्यम से जुड़े हुए थे, जिससे नगर का जीवन संगठित और गतिशील बना रहता था।[30] इस प्रकार राजपूत काल में शहरीकरण केवल नगरों के भौतिक विकास तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन के समग्र विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। नगरों के माध्यम से प्रशासनिक नियंत्रण, सैन्य शक्ति, आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक वैभव का संतुलित मिश्रण दृष्टिगोचर होता था, जिसने मध्यकालीन भारत के शहरी जीवन को अद्वितीय और सुदृढ़ बनाया।[31]

राजपूत काल में आर्थिक और सामाजिक संरचना शहरीकरण की प्रक्रिया के साथ गहराई से जुड़ी हुई थी, और यह स्पष्ट रूप से दिखाता है कि उस समय के नगर केवल निवास या व्यापार के केंद्र नहीं थे, बल्कि प्रशासन, सुरक्षा, संस्कृति और सामाजिक जीवन के समग्र केंद्र थे। कृषि और सिंचाई योग्य भूमि से प्राप्त फसलें, जैसे धान, गेहूँ, बाजरा और तिलहन, समाज और राज्य की आर्थिक आधारशिला थीं, जबकि हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग – जैसे वस्त्र निर्माण, हथियार, आभूषण, मूर्तिकला और कढ़ाई नगरों की अर्थव्यवस्था को सशक्त और गतिशील बनाए रखते थे। नगरों में विकसित बाजार और व्यापारिक केंद्र न केवल आर्थिक गतिविधियों का हृदय थे, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के केंद्र भी थे, जहाँ लोग मिलते, वस्तुओं का आदान–प्रदान करते और सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेते थे। सामाजिक संगठन ने नागरिकों के बीच सहयोग, सामूहिक सुरक्षा और सांस्कृतिक एकता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नगरों की योजना और संरचना में प्रशासनिक और सैन्य दृष्टिकोण का भी विशेष ध्यान रखा गया थाय किले, प्राचीर, मुख्य मार्ग, गलियाँ और जलाशय केवल सुरक्षा और प्रशासन के लिए ही नहीं बल्कि आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों के संचालन के लिए भी अनुकूल थे। शहरीकरण ने नगरों में धार्मिक, शिक्षा, कला और सांस्कृतिक गतिविधियों के विकास को भी प्रोत्साहित किया, जिससे नगरों में सामाजिक सामंजस्य और सांस्कृतिक वैभव उत्पन्न हुआ। इस प्रकार राजपूत कालीन नगर और आर्थिक गतिविधियाँ आपस में गहराई से जुड़ी हुई थीं और उन्होंने केवल आर्थिक समृद्धि ही नहीं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थिरता को भी सुनिश्चित किया। यह काल भारतीय शहरीकरण के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है, जिसने मध्यकालीन और आधुनिक नगरों की नींव रखी, प्रशासनिक और व्यापारिक दृष्टि से संरचित नगरों की परंपरा स्थापित की, और सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन को नगरों के माध्यम से व्यापक रूप से विकसित किया।

संदर्भ :

1. शर्मा, रामजी, *राजपूत इतिहास एवं संस्कृति,* दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, 2003, पृ. 45–46.
2. वर्मा, संजय, *मध्यकालीन भारत में राजपूत राज्य,* भारतीय इतिहास अनुसंधान, जयपुर, 2008, पृ. 13.
3. गुप्ता, मनोज, *पूर्वी भारत का आर्थिक इतिहास,* शोध प्रकाशन, पटना, 2005, पृ. 108–109.
4. चौधरी, हरिहर, *राजपूत समाज और प्रशासन,* नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर, 2010, पृ. 78.
5. वही, पृ. 34–35.
6. जोशी, विजय, *राजस्थान के किले और नगर,* राजस्थान पत्रिका, जयपुर, 2007, पृ. 56–57.
7. त्रिपाठी, श्याम, *भारतीय कृषि इतिहास,* शोध प्रकाशन, वाराणसी, 2009, पृ. 92.
8. पटेल, निर्मल, *हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग,* राष्ट्रीय संग्रहालय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 27–28.
9. भटनागर, रवींद्र, *मध्यकालीन भारत में व्यापारिक मार्ग,* लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, 2006, पृ. 45.
10. गुप्ता, मनोज, *पूर्वोक्त,* पृ. 63–64.
11. दीक्षित, राजेंद्र, *मध्यकालीन भारतीय समाज संरचना,* ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 103.
12. मिश्रा, अंशुल, *भारतीय नगर जीवन का इतिहास,* नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर, 2010, पृ. 39–40.
13. शर्मा, हरीश, *राजपूत कला और वास्तुकला,* जयपुर साहित्य भवन, जयपुर, 2005, पृ. 21–22.
14. वही, पृ. 58.
15. सिंह, कैलाश, *राजपूत राजवंश और सामाजिक संगठन,* दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2004, पृ. 18–19.
16. वर्मा, अर्चना, *राजपूत काल की कृषि और सिंचाई व्यवस्था,* शोध प्रकाशन, पटना, 2009, पृ. 74.
17. गुप्ता, धर्मेंद्र, *हस्तशिल्प एवं कारीगरी का इतिहास,* भारतीय संस्कृति परिषद, नई दिल्ली, 2012, पृ. 32.
18. जैन, संदीप, *मध्यकालीन भारतीय उद्योग और व्यापार,* जयपुर विश्वविद्यालय, जयपुर, 2007, पृ. 48–49.
19. शर्मा, हरीश, *पूर्वोक्त,* पृ. 56.
20. शर्मा, मोहन, *भारतीय शहरों का विकास,* ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 41–42.
21. चौधरी, हरिश, *राजपूत धर्म, संस्कृति और समाज,* साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2011, पृ. 67–68.
22. वही, पृ. 37.
23. मिश्रा, राकेश, *मध्यकालीन भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया,* शोध प्रकाशन, लखनऊ, 2013, पृ. 50–51.
24. पटेल, कमल, *हस्तशिल्प और नगर अर्थव्यवस्था,* भारतीय इतिहास अनुसंधान, अहमदाबाद, 2010, पृ. 29–30.
25. वर्मा, सुनील, *राजपूत काल का प्रशासनिक ढाँचा,* प्रकाशन भारती, दिल्ली, 2006, पृ. 63.
26. वही, पृ. 89–90.
27. त्रिपाठी, विवेक, *राजपूत नगरों की योजना और किलाबंदी,* शोध प्रकाशन, जयपुर, 2008, पृ. 34.
28. भटनागर, मोहन, *हथियार निर्माण और सैन्य शक्ति,* राजस्थान पत्रिका, जयपुर, 2007, पृ. 52–53.
29. शर्मा, नितिन, *मध्यकालीन भारतीय व्यापारिक केंद्र,* भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल, 2012, पृ. 48.
30. पटेल, कमल, *पूर्वोक्त,* पृ. 71.
31. पटेल, राकेश, *मध्यकालीन नगर और बाजार,* राष्ट्रीय संग्रहालय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 39.